INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF MANAGEMENT SOCIOLOGY & HUMANITIES



ISSN 2277 – 9809 (online)
ISSN 2348 - 9359 (Print)

An Internationally Indexed Peer Reviewed & Refereed Journal

www.IRJMSH.com
www.isarasolutions.com

Published by iSaRa Solutions

मोहम्मद अली जिन्ना के राजनीतिक विचार एवं दो-राष्ट्र सिद्धांत: भारतीय विभाजन के संदर्भ में एक राजनीतिक-विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. बृजेश स्वरुप सोनकर

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग

कर्म क्षेत्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इटावा (उ.प्र.)

सारांश (Abstract)

प्रस्तुत शोधपत्र में मोहम्मद अली जिन्ना के राजनीतिक दर्शन, उनके संवैधानिक दृष्टिकोण, हिंदू-मुस्लिम संबंधों के प्रति उनकी बदलती राजनीतिक रणनीति तथा द्वि-राष्ट्र सिद्धांत के ऐतिहासिक एवं वैचारिक आधारों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में जिन्ना एक ऐसे राजनीतिक व्यक्तित्व के रूप में उभरते हैं, जिनके विचारों और राजनीतिक कार्यनीति में संवैधानिक राष्ट्रवाद, अल्पसंख्यक अधिकारों, सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा पृथक राष्ट्र की मांग के बीच जटिल अंतर्संबंध दिखाई देते हैं। उनके प्रारंभिक राजनीतिक दृष्टिकोण में संवैधानिक सुधार, प्रतिनिधिक शासन और हिंदू-मुस्लिम राजनीतिक सहयोग का महत्त्व था। तथापि, औपनिवेशिक शासन की संवैधानिक नीतियों, पृथक निर्वाचन व्यवस्था, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मध्य मतभेदों, प्रांतीय सत्ता-संबंधों तथा स्वतंत्र भारत में मुस्लिम राजनीतिक सुरक्षा को लेकर उत्पन्न आशंकाओं ने उनकी राजनीति को नया स्वरूप प्रदान किया।

प्रस्तुत शोध में द्वि-राष्ट्र सिद्धांत का मूल्यांकन धार्मिक पहचान, सांस्कृतिक विशिष्टता, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, राष्ट्रवाद और राज्य-निर्माण की अवधारणाओं के संदर्भ में किया गया है। लखनऊ समझौता, नेहरू रिपोर्ट, जिन्ना के चौदह सूत्र, लाहौर प्रस्ताव, कैबिनेट मिशन योजना तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 जैसी प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि भारत-विभाजन किसी एक व्यक्ति अथवा एकमात्र वैचारिक कारण का परिणाम नहीं था। इसके पीछे औपनिवेशिक नीतियों, राजनीतिक नेतृत्व के निर्णयों, परस्पर अविश्वास, संवैधानिक समझौतों की विफलता तथा तत्कालीन परिस्थितियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

अध्ययन के निष्कर्ष संकेत करते हैं कि जिन्ना का राजनीतिक दर्शन स्थिर एवं अपरिवर्तनीय विचारधारा के बजाय बदलती राजनीतिक परिस्थितियों में विकसित हुई रणनीति और वैचारिक आग्रहों का सम्मिश्रण था। द्वि-राष्ट्र सिद्धांत ने मुस्लिम राजनीतिक लामबंदी को प्रभावशाली आधार प्रदान किया, किंतु उसकी व्याख्या में धार्मिक पहचान और साझा नागरिकता के बीच उपस्थित तनाव को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

प्रमुख शब्द: मोहम्मद अली जिन्ना, राजनीतिक दर्शन, द्वि-राष्ट्र सिद्धांत, मुस्लिम लीग, सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व, संवैधानिक राष्ट्रवाद, भारत-विभाजन, राष्ट्र-निर्माण।

प्रस्तावना (Introduction)

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ब्रिटिश भारत का राजनीतिक परिदृश्य औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध संघर्ष, संवैधानिक सुधारों की मांग, प्रतिनिधित्व के प्रश्न, सामुदायिक पहचानों के राजनीतिकरण तथा सत्ता-हस्तांतरण से संबंधित वार्ताओं के कारण अत्यंत जटिल हो गया था। इस प्रक्रिया में मोहम्मद अली जिन्ना का व्यक्तित्व विशेष ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। वे एक ओर संवैधानिक विधियों, विधायी प्रतिनिधित्व और राजनीतिक अधिकारों के समर्थक थे, तो दूसरी ओर आगे चलकर मुस्लिम राजनीतिक पृथकता तथा एक स्वतंत्र मुस्लिम-बहुल राज्य की मांग के प्रमुख प्रवक्ता बने। उनके राजनीतिक जीवन का अध्ययन आधुनिक दक्षिण एशिया में राष्ट्रवाद, लोकतंत्र, अल्पसंख्यक अधिकारों और राज्य-निर्माण की समस्याओं को समझने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

मोहम्मद अली जिन्ना का जन्म 25 दिसंबर 1876 को कराची में हुआ था। उन्होंने विधि की शिक्षा प्राप्त की और बंबई में एक सफल अधिवक्ता के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित की। उनका राजनीतिक विकास भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की गतिविधियों से जुड़ा रहा। वे 1913 में मुस्लिम लीग से जुड़े और 1916 के लखनऊ समझौते में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बीच सहयोग स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस समझौते ने भारतीयों के लिए संवैधानिक सुधारों की मांग के साथ-साथ विभिन्न समुदायों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को भी प्रमुखता प्रदान की। जिन्ना की इस भूमिका के कारण उन्हें लंबे समय तक हिंदू-मुस्लिम राजनीतिक सहयोग का समर्थक माना गया। उनके प्रारंभिक राजनीतिक दृष्टिकोण का अध्ययन विलियम एस. मेट्ज और रोजर डी. लॉन्ग के संपादित ग्रंथ *The Political Career of Mohammad Ali Jinnah* तथा आयशा जलाल के अध्ययन *The Sole Spokesman* के संदर्भ में किया जा सकता है।

जिन्ना के राजनीतिक विचारों में परिवर्तन को समझने के लिए उस संवैधानिक वातावरण का अध्ययन आवश्यक है जिसमें ब्रिटिश शासन ने समुदाय-आधारित प्रतिनिधित्व को संस्थागत स्वरूप प्रदान किया। 1909 के भारतीय परिषद अधिनियम ने मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन व्यवस्था को मान्यता दी। इस व्यवस्था ने मुस्लिम राजनीतिक प्रतिनिधित्व को एक विशिष्ट संस्थागत आधार प्रदान किया, किंतु साथ ही निर्वाचन राजनीति में धार्मिक समुदाय को एक अलग राजनीतिक इकाई के रूप में स्थापित करने की प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहित किया। आगे चलकर प्रतिनिधित्व, बहुमतवाद और अल्पसंख्यक सुरक्षा से जुड़े प्रश्न भारतीय संवैधानिक विमर्श के केंद्र में आ गए।

1916 के लखनऊ समझौते में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच सहयोग स्थापित हुआ, परंतु यह सहयोग स्थायी संवैधानिक सहमति में परिवर्तित नहीं हो सका। साइमन कमीशन, नेहरू रिपोर्ट, जिन्ना के चौदह सूत्र और गोलमेज सम्मेलनों के दौरान प्रतिनिधित्व तथा प्रांतीय स्वायत्तता से संबंधित मतभेद अधिक स्पष्ट हुए। जिन्ना का आग्रह था कि किसी भी भावी संवैधानिक व्यवस्था में मुस्लिम समुदाय के राजनीतिक अधिकारों को पर्याप्त सुरक्षा प्राप्त होनी चाहिए। उनके दृष्टिकोण में केवल व्यक्तिगत नागरिक अधिकार पर्याप्त नहीं थे; सामुदायिक प्रतिनिधित्व और राजनीतिक शक्ति में प्रभावी भागीदारी भी आवश्यक थी। लाहौर में 23 मार्च 1940 को अखिल भारतीय मुस्लिम लीग द्वारा पारित प्रस्ताव ने मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों के राजनीतिक भविष्य को लेकर एक निर्णायक बहस उत्पन्न की। प्रस्ताव में उत्तर-पश्चिमी और पूर्वी भारत के मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों को स्वतंत्र इकाइयों के रूप में गठित करने तथा संबंधित इकाइयों को स्वायत्तता और संप्रभुता प्रदान करने की बात कही गई। प्रस्ताव के मूल पाठ

में बाद में प्रचलित हुए 'पाकिस्तान प्रस्ताव' नाम का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं था, किंतु आगे चलकर यही प्रस्ताव पाकिस्तान आंदोलन का केंद्रीय राजनीतिक आधार बना।

द्वि-राष्ट्र सिद्धांत का मूल तर्क यह था कि हिंदू और मुसलमान केवल अलग-अलग धार्मिक समुदाय नहीं, बल्कि अपनी ऐतिहासिक परंपराओं, सामाजिक संस्थाओं, सांस्कृतिक मान्यताओं तथा राजनीतिक हितों के कारण पृथक राष्ट्र हैं। इस दृष्टिकोण ने राष्ट्र की अवधारणा को साझा क्षेत्रीय नागरिकता से हटाकर सामुदायिक पहचान और राजनीतिक आत्मनिर्णय से जोड़ दिया। इसके विपरीत, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की एक प्रभावशाली धारा ने धार्मिक विविधता के बावजूद साझा भारतीय राष्ट्रवाद का समर्थन किया। इस प्रकार दोनों दृष्टिकोणों के बीच संघर्ष केवल राज्य की सीमाओं का प्रश्न नहीं था, बल्कि इस मूल प्रश्न से भी संबंधित था कि राष्ट्र का निर्माण नागरिकता, साझा इतिहास, सांस्कृतिक विविधता अथवा धार्मिक पहचान में से किस आधार पर होना चाहिए। भारत-विभाजन की परिणति 1947 में ब्रिटिश भारत के विभाजन और भारत तथा पाकिस्तान के स्वतंत्र राज्यों के गठन के रूप में हुई। यह घटना केवल राजनीतिक सीमाओं के पुनर्निर्धारण तक सीमित नहीं रही, बल्कि इससे व्यापक जन-स्थानांतरण, सांप्रदायिक हिंसा, पारिवारिक विस्थापन और सामाजिक पुनर्गठन भी हुआ। इसलिए जिन्ना के राजनीतिक दर्शन का अध्ययन करते समय उनके राजनीतिक उद्देश्यों, संवैधानिक मांगों, नेतृत्व-रणनीति तथा विभाजन के व्यापक मानवीय परिणामों का समेकित विश्लेषण आवश्यक है।

प्रस्तुत शोधपत्र में जिन्ना के राजनीतिक विचारों को न तो केवल राष्ट्रनिर्माता के रूप में उनके महिमामंडन तक सीमित किया गया है और न ही भारत-विभाजन के लिए समस्त उत्तरदायित्व एक व्यक्ति पर आरोपित किया गया है। इसके स्थान पर उनके राजनीतिक दर्शन का ऐतिहासिक संदर्भों, संवैधानिक घटनाओं और वैकल्पिक राष्ट्रवादी दृष्टिकोणों के आधार पर आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है। अध्ययन की तथ्यात्मक सीमा 31 दिसंबर 2016 तक उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री और प्रकाशित शोध-साहित्य तक निर्धारित की गई है।

शोध का महत्त्व एवं आवश्यकता (Significance and Need of the Study)

- **राजनीतिक-सैद्धांतिक महत्त्व:** यह शोध पत्र बहु-जातीय एवं बहु-धार्मिक समाजों में 'बहुसंख्यकवाद' (Majoritarianism) और 'अल्पसंख्यक आशंकाओं' के बीच के द्वंद्व को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण सैद्धांतिक ढांचा प्रदान करता है।
- **दक्षिण एशियाई भू-राजनीति को समझने हेतु:** भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश के वर्तमान द्विपक्षीय संबंधों और क्षेत्र में व्याप्त ऐतिहासिक अविश्वास के मूल कारणों को समझने के लिए जिन्ना के वैचारिक रूपांतरण का अध्ययन आवश्यक है।
- **संवैधानिक सबक:** यह अध्ययन दर्शाता है कि किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में अल्पसंख्यकों के लिए केवल चुनावी भागीदारी पर्याप्त नहीं है, बल्कि वास्तविक शक्ति-साझाकरण (Power-Sharing) का अभाव कैसे राष्ट्र-राज्यों के विघटन का कारण बन सकता है।

शोध समस्या (Statement of the Research Problem)

1947 में भारत का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण आधुनिक इतिहास की एक अत्यंत दूरगामी घटना है। यद्यपि जिन्ना को अक्सर इस विभाजन का मुख्य वास्तुकार माना जाता है, परंतु राजनीति विज्ञान में

यह प्रश्न अत्यंत प्रासंगिक है कि क्या जिन्ना की वैचारिकी प्रारंभ से ही विभाजनकारी थी, या उनका दो-राष्ट्र सिद्धांत संवैधानिक वार्ताओं में सौदेबाजी (Bargaining) का एक राजनीतिक साधन था, जो बाद में बदलती राजनीतिक परिस्थितियों और संस्थागत विफलताओं के कारण एक अपरिहार्य ऐतिहासिक परिणति बन गया।

साहित्य की समीक्षा (Review of Literature)

जिन्ना के राजनीतिक चिंतन और भारतीय विभाजन पर इतिहासकारों तथा राजनीतिशास्त्रियों द्वारा प्रचुर मात्रा में अध्ययन किया गया है:

1. **वोल्पर्ट (1984)** ने अपने अध्ययन *Jinnah of Pakistan* में जिन्ना के व्यक्तित्व और राजनीतिक जीवन का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया। वे जिन्ना को एक कुशल संवैधानिक रणनीतिकार मानते हैं और तर्क देते हैं कि "कुछ ही व्यक्ति इतिहास के प्रवाह को बदलते हैं, और उनमें से भी बहुत कम दुनिया का नक्शा बदलते हैं–जिन्ना ने दोनों किया।"
2. **जलाल (1985)** ने *The Sole Spokesman* में एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उनका तर्क है कि जिन्ना का 'पाकिस्तान' का नारा वास्तव में पूर्ण विभाजन के लिए नहीं, बल्कि एकीकृत भारत के केंद्र में मुसलमानों के लिए बराबरी का संवैधानिक अधिकार हासिल करने का एक 'सौदेबाजी का साधन' (Bargaining Chip) था।
3. **मेनन (1957)** ने *The Transfer of Power in India* में ब्रिटिश प्रशासनिक अभिलेखों के आधार पर दिखाया कि कैसे कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच संवैधानिक सहमति न बन पाने के कारण ब्रिटिश सरकार को विभाजन की योजना स्वीकार करनी पड़ी।
4. **आजाद (1959)** ने *India Wins Freedom* में 1937 के प्रांतीय चुनावों के बाद कांग्रेस द्वारा मुस्लिम लीग को मंत्रिमंडल में शामिल न करने तथा 1946 के त्रि-स्तरीय संघ ढाँचे के असफल होने को विभाजन के मुख्य निर्णायक मोड़ों के रूप में रेखांकित किया है।

शोध-अंतराल (Research Gap)

उपलब्ध साहित्य की समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश पूर्ववर्ती शोध इतिहासपरक (Historical Narrative) हैं या जिन्ना के व्यक्तिगत चरित्र-चित्रण पर केंद्रित हैं। वर्तमान शोध का मुख्य उद्देश्य पूर्वाग्रही ऐतिहासिक आख्यानों से परे हटकर जिन्ना के राजनीतिक विचारों और दो-राष्ट्र सिद्धांत का **राजनीति शास्त्र के सिद्धांतों (जैसे- अल्पसंख्यकों का अधिकार, पावर-शेयरिंग मॉडल, और वेस्टमिंस्टर संसदीय प्रणाली की सीमाएं)** के आलोक में शुद्ध विश्लेषणात्मक मूल्यांकन करना है। यह अध्ययन इस प्रश्न पर ध्यान केंद्रित करता है कि कैसे एक संवैधानिक धर्मनिरपेक्ष नेता संरचनात्मक-संस्थागत (Structural-Institutional) विफलताओं के कारण पृथकतावादी रणनीति की ओर अग्रसर हुआ।

शोध के उद्देश्य (Objectives of the Study)

1. मोहम्मद अली जिन्ना के राजनीतिक विचारों के क्रमिक विकास (उदारवादी धर्मनिरपेक्षता से पृथकतावादी वैचारिकी तक) का विश्लेषण करना।
2. दो-राष्ट्र सिद्धांत (Two-Nation Theory) के वैचारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक आधारों का परीक्षण करना।
3. 1937 से 1947 के मध्य हुए प्रमुख संवैधानिक गतिरोधों तथा राजनीतिक घटनाक्रमों का भारतीय विभाजन पर पड़े प्रभाव का अध्ययन करना।
4. यह विश्लेषित करना कि जिन्ना का दो-राष्ट्र सिद्धांत धार्मिक आस्था पर आधारित था या अल्पसंख्यक राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा की संवैधानिक रणनीति पर।

शोध प्रश्न (Research Questions)

1. मोहम्मद अली जिन्ना का राजनीतिक दर्शन उदारवादी धर्मनिरपेक्षता से दो-राष्ट्र सिद्धांत की ओर किस प्रकार रूपांतरित हुआ?
2. क्या दो-राष्ट्र सिद्धांत मुख्य रूप से एक धार्मिक विचार था या अल्पसंख्यक अधिकारों की रक्षा हेतु निर्मित एक संवैधानिक व राजनीतिक रणनीति?
3. 1937 के प्रांतीय चुनावों और 1946 की कैबिनेट मिशन योजना के विफल होने ने विभाजन को अपरिहार्य बनाने में क्या भूमिका निभाई?

परिकल्पना (Hypothesis)

- जिन्ना का दो-राष्ट्र सिद्धांत किसी धार्मिक कट्टरता का परिणाम नहीं, बल्कि एकीकृत भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय के राजनीतिक प्रतिनिधित्व और अधिकार-सुरक्षा की विफलता की प्रतिक्रिया था।
- 1937 के प्रांतीय चुनावों के बाद कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच सत्ता-साझाकरण का अभाव तथा 1946 की कैबिनेट मिशन योजना का विफल होना भारतीय विभाजन के मुख्य उत्प्रेरक कारक बने।

सैद्धांतिक आधार (Theoretical Framework)

प्रस्तुत अध्ययन राजनीति विज्ञान के **संसदीय बहुसंख्यकवाद (Majoritarianism)**, **कंसोसिएशनल लोकतंत्र (Consociational Democracy)**, तथा **संवैधानिक सौदेबाजी (Constitutional Bargaining)** के सिद्धांतों पर आधारित है। जिन्ना का यह मानना था कि वेस्टमिंस्टर प्रणाली (बहुमत का शासन) बहु-जातीय/बहु-धार्मिक समाजों में अल्पसंख्यकों को स्थायी रूप से हाशिए पर धकेल देती है, जब तक कि उनके लिए विशिष्ट संवैधानिक सुरक्षा उपाय और वीटो अधिकार न हों।

शोध पद्धति एवं प्रविधि (Research Methodology)

प्रस्तुत शोध पत्र **गुणात्मक एवं ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक शोध पद्धति (Qualitative & Historical-Analytical Methodology)** पर आधारित है।

- **प्राथमिक स्रोत (Primary Sources):** जिन्ना के भाषण, पत्र-व्यवहार, ऑल इंडिया मुस्लिम लीग के आधिकारिक दस्तावेज, लाहौर प्रस्ताव (1940), कैबिनेट मिशन रिपोर्ट्स और उस दौर के संवैधानिक दस्तावेज।

- **द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources):** प्रामाणिक इतिहासकारों, राजनीति शास्त्रियों की पुस्तकें, शोध पत्र, तथा ब्रिटिश भारत के प्रासंगिक अभिलेखीय संदर्भ।

अध्ययन का क्षेत्र एवं सीमाएँ (Scope and Limitations)

- **क्षेत्र:** यह अध्ययन मुख्य रूप से 1906 (मुस्लिम लीग की स्थापना और जिन्ना का कांग्रेस में प्रवेश) से लेकर 1947 (भारत विभाजन एवं पाकिस्तान निर्माण) तक के कालखंड के राजनीतिक और संवैधानिक घटनाक्रमों तक सीमित है।
- **सीमाएं:** यह शोध मुख्य रूप से जिन्ना के राजनीतिक दर्शन, भाषणों और संवैधानिक वार्ताओं के राजनीतिक विश्लेषण तक सीमित है; इसमें विभाजन के दौरान हुए जन-सांख्यिकी विस्थापन के सामाजिक-आर्थिक पहलुओं का विस्तृत विश्लेषण शामिल नहीं है।

जिन्ना के राजनीतिक दर्शन का ऐतिहासिक एवं वैचारिक विश्लेषण

1. संवैधानिक राष्ट्रवाद और राजनीतिक सहयोग - जिन्ना के प्रारंभिक राजनीतिक चिंतन की प्रमुख विशेषता संवैधानिक तरीकों के माध्यम से राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति थी। वे विधायी सुधारों, प्रतिनिधित्व और राजनीतिक वार्ताओं को महत्त्व देते थे। उनके राजनीतिक दृष्टिकोण में विभिन्न भारतीय समुदायों के बीच सहयोग की संभावना बनी हुई थी। 1916 का लखनऊ समझौता इस दृष्टिकोण का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। इस समझौते ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग को संवैधानिक सुधारों के प्रश्न पर निकट लाने में भूमिका निभाई। हालाँकि लखनऊ समझौते में पृथक निर्वाचन व्यवस्था को स्वीकार किया गया, फिर भी इसे पूर्णतः सांप्रदायिक विभाजन का दस्तावेज मानना उचित नहीं होगा। उस समय यह समझौता विभिन्न समुदायों के प्रतिनिधित्व और राजनीतिक सहयोग के बीच व्यावहारिक संतुलन स्थापित करने का प्रयास था। दूसरी ओर, पृथक निर्वाचन व्यवस्था ने धार्मिक समुदायों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व की अलग-अलग इकाइयों के रूप में संस्थागत आधार भी प्रदान किया। इस प्रकार इस समझौते में सहयोग की संभावना और सामुदायिक राजनीतिक पृथकता, दोनों के तत्त्व विद्यमान थे।

जिन्ना के राजनीतिक जीवन का यह पक्ष दर्शाता है कि उनकी राजनीति को आरंभ से ही पृथक राष्ट्र की मांग से जोड़कर नहीं देखा जा सकता। उनके विचारों के विकास को समझने के लिए तत्कालीन संवैधानिक परिस्थितियों और विभिन्न राजनीतिक शक्तियों के बीच सत्ता-संबंधों का अध्ययन आवश्यक है।

2. नेहरू रिपोर्ट और जिन्ना के चौदह सूत्र - 1928 की नेहरू रिपोर्ट ने भारत के भावी संवैधानिक ढाँचे के संबंध में महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव प्रस्तुत किए। रिपोर्ट के विभिन्न प्रावधानों, विशेषकर प्रतिनिधित्व और अल्पसंख्यक संरक्षण के प्रश्नों पर, मुस्लिम लीग के कुछ नेताओं तथा जिन्ना की आपत्तियाँ सामने आईं। जिन्ना को आशंका थी कि प्रस्तावित व्यवस्था में मुस्लिम समुदाय के राजनीतिक हितों और प्रांतीय स्वायत्तता को पर्याप्त सुरक्षा नहीं मिलेगी। इन मतभेदों की पृष्ठभूमि में जिन्ना ने 1929 में अपने चौदह सूत्र प्रस्तुत किए। इनमें संघीय शासन, प्रांतों के लिए अवशिष्ट शक्तियाँ, प्रांतीय स्वायत्तता, केंद्र में मुस्लिम प्रतिनिधित्व, पृथक निर्वाचन तथा सांस्कृतिक और धार्मिक अधिकारों की सुरक्षा जैसे विषय प्रमुख थे। इन सूत्रों को मुस्लिम राजनीतिक हितों की संवैधानिक सुरक्षा के प्रयास के रूप में देखा जा सकता है।

राजनीतिक दृष्टि से चौदह सूत्रों का महत्त्व इस बात में था कि उन्होंने केवल धार्मिक पहचान पर बल देने के बजाय प्रतिनिधित्व, संघवाद और संवैधानिक शक्ति-वितरण की समस्याओं को भी सामने रखा। तथापि, पृथक निर्वाचन और समुदाय-आधारित प्रतिनिधित्व पर बल देने से नागरिकता की साझा अवधारणा और सामुदायिक राजनीतिक पहचान के बीच तनाव भी बना रहा।

3. मुस्लिम लीग का पुनर्गठन और राजनीतिक लामबंदी - मुस्लिम लीग के नेतृत्व में जिन्ना की भूमिका का विस्तार केवल वैचारिक तर्कों के कारण नहीं हुआ। इसके साथ संगठनात्मक पुनर्गठन, प्रांतीय राजनीति, चुनावी प्रतिस्पर्धा और ब्रिटिश शासन के साथ संवैधानिक वार्ताओं का भी महत्वपूर्ण संबंध था। जिन्ना ने मुस्लिम लीग को मुस्लिम राजनीतिक हितों की केंद्रीय प्रतिनिधि संस्था के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। 1937 के प्रांतीय चुनावों के परिणामों ने मुस्लिम लीग के सामने संगठनात्मक चुनौतियाँ प्रस्तुत कीं। अनेक प्रांतों में क्षेत्रीय दलों और स्थानीय नेताओं का प्रभाव बना हुआ था। इससे स्पष्ट होता है कि मुस्लिम राजनीति एकरूप नहीं थी और विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक संरचना, आर्थिक हित तथा राजनीतिक प्राथमिकताएँ अलग-अलग थीं। आगे चलकर मुस्लिम लीग ने इन विविध हितों को व्यापक मुस्लिम राजनीतिक पहचान के अंतर्गत संगठित करने का प्रयास किया।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण विश्लेषणात्मक प्रश्न उत्पन्न होता है: क्या मुस्लिम लीग का समर्थन मुस्लिम समुदाय की प्रत्येक राजनीतिक धारणा का प्रतिनिधित्व करता था? इसका उत्तर सकारात्मक रूप से नहीं दिया जा सकता। चुनावी सफलता राजनीतिक प्रतिनिधित्व का महत्त्वपूर्ण प्रमाण थी, लेकिन उससे प्रत्येक व्यक्ति की वैचारिक सहमति अथवा पृथक राष्ट्र की मांग के प्रति समान समर्थन स्वतः सिद्ध नहीं होता।

4. लाहौर प्रस्ताव और द्वि-राष्ट्र सिद्धांत - 23 मार्च 1940 को पारित लाहौर प्रस्ताव ने मुस्लिम लीग की राजनीतिक मांगों को नया स्वरूप प्रदान किया। प्रस्ताव में मुस्लिम-बहुल उत्तर-पश्चिमी तथा पूर्वी क्षेत्रों को स्वतंत्र राजनीतिक इकाइयों में संगठित करने और संबंधित इकाइयों को स्वायत्तता तथा संप्रभुता प्रदान करने की बात कही गई। इसके बाद पाकिस्तान की मांग मुस्लिम लीग की राजनीति का प्रमुख आधार बनती गई। द्वि-राष्ट्र सिद्धांत के अनुसार हिंदू और मुसलमान अलग-अलग ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सामाजिक परंपराओं वाले राष्ट्र थे। इस दृष्टिकोण में धर्म को केवल व्यक्तिगत आस्था तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उसे सामुदायिक पहचान और राजनीतिक भविष्य के निर्धारण से भी जोड़ा गया। जिन्ना के तर्क का महत्त्वपूर्ण पक्ष यह था कि वे मुस्लिम समुदाय को केवल संख्यात्मक अल्पसंख्यक के रूप में देखने के बजाय एक ऐसी राजनीतिक इकाई के रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे, जिसके अधिकारों और भविष्य के संबंध में स्वतंत्र संवैधानिक निर्णय आवश्यक हो।

इस सिद्धांत की आलोचनात्मक सीमा यह थी कि धार्मिक समुदायों के भीतर मौजूद भाषाई, क्षेत्रीय, जातीय, वर्गीय और राजनीतिक विविधताओं को एक व्यापक सामुदायिक पहचान के अंतर्गत समाहित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त, भारत के अनेक मुसलमान मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों के बाहर रहते थे। अतः पृथक राज्य का निर्माण उन सभी मुसलमानों की राजनीतिक सुरक्षा की समस्या का स्वतः समाधान नहीं कर सकता था, जो प्रस्तावित पाकिस्तान की सीमाओं के बाहर रह जाने वाले थे। लाहौर प्रस्ताव के मूल पाठ और उसके बाद की राजनीतिक व्याख्याओं में अंतर करना भी आवश्यक है। प्रस्ताव में स्वतंत्र इकाइयों तथा उनकी संप्रभुता की बात की गई थी; उसके बाद पाकिस्तान आंदोलन के विकास के साथ इन मांगों का राजनीतिक अर्थ अधिक स्पष्ट होता

गया। इसलिए प्रस्ताव को उसके मूल संवैधानिक शब्दों और बाद में विकसित राजनीतिक उद्देश्य, दोनों के संदर्भ में समझना चाहिए।

5. द्वि-राष्ट्र सिद्धांत और भारतीय राष्ट्रवाद - द्वि-राष्ट्र सिद्धांत की तुलना भारतीय राष्ट्रवाद की उस अवधारणा से की जा सकती है जिसमें भारत की विभिन्न धार्मिक, भाषाई और सांस्कृतिक समुदायों को एक साझा राजनीतिक राष्ट्र का हिस्सा माना गया। इस दृष्टिकोण के अनुसार राष्ट्रीय एकता के लिए धार्मिक समानता अनिवार्य नहीं थी; समान नागरिकता, राजनीतिक स्वतंत्रता और साझा संस्थाएँ राष्ट्रीय जीवन का आधार बन सकती थीं। दोनों दृष्टिकोणों के बीच मूल अंतर राष्ट्र की परिभाषा में था। द्वि-राष्ट्र सिद्धांत धार्मिक-सांस्कृतिक विशिष्टता को राजनीतिक राष्ट्रत्व का आधार बनाता था, जबकि साझा भारतीय राष्ट्रवाद विविध समुदायों की सह-अस्तित्वपूर्ण नागरिकता पर बल देता था। तथापि, भारतीय राष्ट्रवाद के समर्थकों के समक्ष भी अल्पसंख्यक अधिकारों, प्रतिनिधित्व और बहुमत के प्रभुत्व से संबंधित वास्तविक संवैधानिक प्रश्न उपस्थित थे। केवल साझा राष्ट्रीयता की घोषणा इन समस्याओं का समाधान नहीं कर सकती थी; इसके लिए संस्थागत सुरक्षा और विश्वसनीय सत्ता-साझेदारी आवश्यक थी।

इसी प्रकार, मुस्लिम राजनीतिक सुरक्षा की मांग को केवल सांप्रदायिकता के रूप में खारिज कर देना भी ऐतिहासिक जटिलता को कम करके आँकना होगा। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह आवश्यक है कि बहुसंख्यक शासन अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों, राजनीतिक भागीदारी और सांस्कृतिक स्वतंत्रता की रक्षा करे। समस्या उस समय उत्पन्न होती है जब इस सुरक्षा का समाधान साझा नागरिकता को मजबूत करने के बजाय स्थायी धार्मिक राजनीतिक पृथकता में खोजा जाता है।

6. कैबिनेट मिशन योजना और संवैधानिक समझौते की विफलता - 1946 की कैबिनेट मिशन योजना का उद्देश्य ब्रिटिश भारत में सत्ता-हस्तांतरण के लिए एक संवैधानिक व्यवस्था विकसित करना था। इसमें अखिल भारतीय संघ, केंद्र के सीमित विषयों तथा प्रांतों के समूहों से संबंधित प्रावधान शामिल थे। इस योजना में एक ओर भारत की राजनीतिक एकता बनाए रखने का प्रयास था, तो दूसरी ओर मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों की राजनीतिक आकांक्षाओं के लिए संस्थागत स्थान उपलब्ध कराने की संभावना भी थी। योजना की व्याख्या, प्रांतीय समूहों की अनिवार्यता, भावी संविधान सभा की शक्तियों और केंद्र की संरचना को लेकर कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बीच गंभीर मतभेद बने रहे। इन मतभेदों के कारण स्थायी संवैधानिक सहमति स्थापित नहीं हो सकी। इस विफलता ने विभाजन की संभावना को अधिक प्रबल किया।

राजनीति विज्ञान की दृष्टि से यह प्रसंग बताता है कि विविधतापूर्ण समाजों में केवल संवैधानिक प्रारूप प्रस्तुत कर देना पर्याप्त नहीं होता। राजनीतिक दलों के बीच विश्वास, प्रस्तावों की साझा व्याख्या और भविष्य की सत्ता-संरचना के संबंध में विश्वसनीय आश्वासन भी आवश्यक होते हैं। जब राजनीतिक पक्ष किसी समझौते को अपने दीर्घकालीन हितों के लिए असुरक्षित मानते हैं, तब संस्थागत समाधान कमजोर पड़ सकते हैं।

7. भारत-विभाजन और जिन्ना की राजनीतिक भूमिका - 1947 में भारत-विभाजन के साथ पाकिस्तान का गठन हुआ और ब्रिटिश शासन का अंत हुआ। जिन्ना पाकिस्तान के निर्माण के प्रमुख राजनीतिक नेता थे। इस दृष्टि से उनकी भूमिका आधुनिक दक्षिण एशिया के राजनीतिक इतिहास में निर्णायक रही। तथापि, विभाजन की प्रक्रिया को केवल उनके व्यक्तिगत निर्णय का परिणाम मानना उचित नहीं है। विभाजन की पृष्ठभूमि में ब्रिटिश

औपनिवेशिक शासन की नीतियाँ, धार्मिक प्रतिनिधित्व की संस्थागत व्यवस्था, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच सत्ता-साझेदारी को लेकर मतभेद, कैबिनेट मिशन योजना की विफलता तथा सत्ता-हस्तांतरण की शीघ्रता जैसे अनेक कारक सम्मिलित थे। इन कारकों का महत्त्व विभिन्न ऐतिहासिक व्याख्याओं में अलग-अलग रूप से रेखांकित किया गया है। विभाजन के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर लोगों को अपने निवास-स्थानों से पलायन करना पड़ा। अनेक परिवारों ने संपत्ति, आजीविका और सामाजिक संबंधों को खोया तथा व्यापक सांप्रदायिक हिंसा का सामना किया। इस मानवीय त्रासदी के मूल्यांकन में राजनीतिक नेतृत्व की रणनीतियों के साथ-साथ प्रशासनिक तैयारियों, सीमा-निर्धारण और कानून-व्यवस्था की परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

इस प्रकार पाकिस्तान का निर्माण मुस्लिम राजनीतिक आत्मनिर्णय की मांग की ऐतिहासिक परिणति था, किंतु इसके साथ उत्पन्न मानवीय और सामाजिक संकट यह प्रश्न भी उठाता है कि क्या विभाजन धार्मिक समुदायों की सुरक्षा और स्थायी राजनीतिक शांति स्थापित करने का प्रभावी समाधान सिद्ध हुआ।

8. जिन्ना का 11 अगस्त 1947 का संबोधन और नागरिक समानता - पाकिस्तान की संविधान सभा में 11 अगस्त 1947 को दिए गए अपने अध्यक्षीय संबोधन में जिन्ना ने नागरिकों की समानता, धार्मिक स्वतंत्रता और राज्य के प्रति समान नागरिक अधिकारों पर बल दिया। उन्होंने कहा कि नागरिकों को अपने मंदिरों, मस्जिदों अथवा अन्य उपासना-स्थलों में जाने की स्वतंत्रता होनी चाहिए और धर्म, जाति या पंथ के आधार पर नागरिकता की समानता प्रभावित नहीं होनी चाहिए। यह संबोधन पाकिस्तान के भावी संवैधानिक स्वरूप के संबंध में महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

इस संबोधन का विश्लेषण करते समय दो पक्ष सामने आते हैं। पहला, जिन्ना की नागरिक समानता संबंधी घोषणा एक ऐसे राज्य की कल्पना प्रस्तुत करती है जिसमें धार्मिक पहचान नागरिक अधिकारों के निर्धारण का आधार नहीं बननी चाहिए। दूसरा, पाकिस्तान की स्थापना के लिए प्रस्तुत द्वि-राष्ट्र सिद्धांत धार्मिक समुदायों की पृथक राजनीतिक पहचान पर आधारित था। इन दोनों पक्षों के बीच संबंध को समझने के लिए यह देखना आवश्यक है कि क्या जिन्ना एक मुस्लिम राजनीतिक पहचान के आधार पर राज्य की स्थापना करते हुए राज्य के भीतर समान नागरिकता को सुनिश्चित करना चाहते थे।

इस प्रश्न का एकमात्र निर्विवाद उत्तर प्रस्तुत करना कठिन है। संबोधन को नागरिक समानता और धार्मिक स्वतंत्रता के स्पष्ट समर्थन के रूप में पढ़ा जा सकता है, किंतु इससे उनके पूर्ववर्ती राजनीतिक विचारों के सभी अंतर्विरोध स्वतः समाप्त नहीं हो जाते। इसलिए उनके राजनीतिक दर्शन का संतुलित मूल्यांकन करते समय भाषण के वास्तविक शब्दों, उसके ऐतिहासिक संदर्भ और पाकिस्तान के निर्माण के वैचारिक आधार–तीनों पर ध्यान देना आवश्यक है।

मुख्य विश्लेषणात्मक खंड (Core Analytical Sections)

1. जिन्ना का प्रारंभिक राजनीतिक दर्शन: 'हिंदू-मुस्लिम एकता के दूत' से निराशा की ओर - जिन्ना ने अपने राजनीतिक जीवन का प्रारंभ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उदारवादी धड़े से किया। वे दादाभाई नौरोजी और गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों से गहराई से प्रभावित थे -

- **संवैधानिक एवं धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण:** जिन्ना ब्रिटिश कानून और उदारवादी लोकतांत्रिक सिद्धांतों में विश्वास रखते थे। वे राजनीति में धार्मिक प्रतीकों के प्रयोग के सख्त विरोधी थे।

- **1916 का लखनऊ समझौता:** जिन्ना के प्रयासों से कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच ऐतिहासिक लखनऊ समझौता हुआ, जिसमें मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल (Separate Electorate) को स्वीकार किया गया। इस सफलता पर सरोजिनी नायडू ने जिन्ना को 'हिंदू-मुस्लिम एकता का दूत' कहा था।
- **संवैधानिक गतिरोध और मोहभंग:** 1928 की 'नेहरू रिपोर्ट' में पृथक निर्वाचक मंडल को समाप्त करने का प्रस्ताव रखा गया। इसके जवाब में जिन्ना ने अपने प्रसिद्ध **14 सूत्र (Fourteen Points, 1929)** प्रस्तुत किए, जिनमें मुसलमानों के लिए 1/3 केंद्रीय प्रतिनिधित्व और प्रांतीय स्वायत्तता की मांग की गई। कांग्रेस द्वारा इन मांगों को खारिज करने के बाद जिन्ना ने इसे "रास्तों का अलग होना" (Parting of ways) कहा।

2. दो-राष्ट्र सिद्धांत का उद्भव एवं वैचारिक संरचना - 22-24 मार्च 1940 को लाहौर में मुस्लिम लीग के अधिवेशन में जिन्ना ने अपने अध्यक्षीय भाषण में दो-राष्ट्र सिद्धांत की औपचारिक व्याख्या की:
"हिंदू और मुसलमान दो अलग-अलग धार्मिक दर्शनों, सामाजिक रीति-रिवाजों और साहित्य से संबंध रखते हैं... वे दो अलग-अलग सभ्यताओं से संबंधित हैं जो विरोधी विचारों पर आधारित हैं।" इसी अधिवेशन में 'लाहौर प्रस्ताव' पारित हुआ, जिसमें उत्तर-पश्चिम और पूर्वी भारत के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों को स्वायत्त एवं संप्रभु राज्यों के रूप में गठित करने की मांग की गई। यह सिद्धांत तीन मुख्य आधारों पर टिका था:

1. **अल्पसंख्यक बनाम राष्ट्र की अवधारणा:** मुसलमान महज एक धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय नहीं, बल्कि एक संपूर्ण राष्ट्र (Nation) हैं।
2. **बहुसंख्यकवाद का भय:** वेस्टमिंस्टर-शैली की लोकतांत्रिक व्यवस्था में बहुसंख्यक शासन का अर्थ मुसलमानों के लिए स्थायी अधीनता होगा।
3. **आर्थिक एवं प्रशासनिक सुरक्षा:** मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में स्वायत्तता के माध्यम से मुसलमानों के प्रशासनिक व आर्थिक हितों की रक्षा।

द्वि-राष्ट्र सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्यांकन

द्वि-राष्ट्र सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते समय उसके ऐतिहासिक औचित्य, राजनीतिक प्रभाव, संवैधानिक सीमाओं और सामाजिक परिणामों का अलग-अलग परीक्षण आवश्यक है। इस सिद्धांत ने मुस्लिम लीग को एक व्यापक राजनीतिक कार्यक्रम प्रदान किया, किंतु उसकी व्याख्या और परिणति से अनेक प्रश्न भी उत्पन्न हुए।

प्रथम, राजनीतिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न: ब्रिटिश भारत में मुसलमानों की राजनीतिक भागीदारी और अल्पसंख्यक सुरक्षा से संबंधित चिंताएँ वास्तविक संवैधानिक प्रश्न थीं। जिन्ना ने इन प्रश्नों को राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में स्थापित किया। किंतु प्रतिनिधित्व की समस्या का समाधान पृथक राष्ट्र के अतिरिक्त संघीय शासन, संवैधानिक अधिकारों, अनुपातिक प्रतिनिधित्व और सत्ता-साझेदारी जैसे विकल्पों के माध्यम से भी खोजा जा सकता था।

द्वितीय, राष्ट्र की अवधारणा: द्वि-राष्ट्र सिद्धांत ने धार्मिक-सांस्कृतिक पहचान को राष्ट्रत्व का प्रमुख आधार बनाया। इसकी सीमा यह थी कि एक ही भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले लोगों की साझा आर्थिक, सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों की तुलना में धार्मिक विभाजन को अधिक राजनीतिक महत्त्व प्राप्त हुआ। इसके विपरीत, नागरिक राष्ट्रवाद धार्मिक विविधता के बावजूद साझा संवैधानिक व्यवस्था की संभावना प्रस्तुत करता है।

तृतीय, मुस्लिम समुदाय की आंतरिक विविधता: भारतीय मुसलमान कोई एकरूप राजनीतिक समूह नहीं थे। उनकी भाषाएँ, क्षेत्रीय पहचान, आर्थिक स्थिति और राजनीतिक प्राथमिकताएँ अलग-अलग थीं। मुस्लिम लीग का प्रभाव बढ़ने के बावजूद यह मानना उचित नहीं होगा कि प्रत्येक मुस्लिम नागरिक ने पृथक राष्ट्र की मांग का समान रूप से समर्थन किया था। 1946 के चुनावों ने मुस्लिम लीग की राजनीतिक स्थिति को मजबूत किया, किंतु चुनावी परिणामों को प्रत्येक मतदाता की सभी वैचारिक प्राथमिकताओं का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं माना जा सकता।

चतुर्थ, विभाजन के सामाजिक परिणाम: पाकिस्तान के निर्माण ने पृथक मुस्लिम-बहुल राज्य की मांग को राजनीतिक रूप से साकार किया, परंतु विभाजन के साथ बड़े पैमाने पर विस्थापन, सांप्रदायिक हिंसा और मानवीय पीड़ा भी जुड़ी रही। इससे स्पष्ट होता है कि राजनीतिक आत्मनिर्णय की प्राप्ति और सामाजिक शांति की स्थापना दो अलग-अलग प्रश्न हैं।

पंचम, नागरिक समानता का प्रश्न: जिन्ना के 11 अगस्त 1947 के संबोधन में नागरिकों के समान अधिकारों और धार्मिक स्वतंत्रता पर बल दिया गया। इससे स्पष्ट होता है कि राज्य की स्थापना में सामुदायिक पहचान की भूमिका और राज्य के भीतर नागरिक समानता की अवधारणा के बीच एक महत्वपूर्ण वैचारिक संबंध था। इस संबंध का मूल्यांकन करते समय दोनों पक्षों को एक साथ समझना आवश्यक है।

समग्रतः द्वि-राष्ट्र सिद्धांत को न तो केवल मुस्लिम समुदाय की सुरक्षा का निर्विवाद समाधान माना जा सकता है और न ही उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की उपेक्षा करके उसका मूल्यांकन किया जा सकता है। उसका महत्त्व इस बात में भी निहित है कि उसने आधुनिक दक्षिण एशिया में राष्ट्रवाद, सामुदायिक पहचान, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और राज्य की वैधता संबंधी बहसों को गहराई से प्रभावित किया।

3. 1937-1947: विभाजन की ओर ले जाने वाले प्रमुख घटनाक्रम

क्र. सं.	कालखंड / घटना	राजनीतिक घटनाक्रम	जिन्ना एवं मुस्लिम लीग की भूमिका का विश्लेषण
1.	**1937 के प्रांतीय चुनाव**	11 में से 8 प्रांतों में कांग्रेस ने सरकार बनाई; लीग को सीमित सफलता मिली।	कांग्रेस द्वारा गठबंधन सरकार बनाने से इनकार के बाद लीग ने व्यापक जन-संपर्क अभियान चलाकर मुस्लिम जनाधार बढ़ाया।
2.	**1939 - मुक्ति दिवस**	द्वितीय विश्व युद्ध के विरोध में कांग्रेस मंत्रिमंडलों का त्यागपत्र।	जिन्ना ने 22 दिसंबर 1939 को 'मुक्ति दिवस' के रूप में मनाया, जिससे कांग्रेस और लीग के बीच खाई और चौड़ी हुई।
3.	**1942 - क्रिप्स मिशन**	युद्ध के बाद भारत को डोमिनियन स्टेटस देने का ब्रिटिश प्रस्ताव।	जिन्ना ने इसे खारिज कर दिया क्योंकि इसमें स्पष्ट रूप से पाकिस्तान की मांग स्वीकार नहीं की गई थी।
4.	**1944 - गांधी-जिन्ना वार्ता**	विभाजन और दो-राष्ट्र सिद्धांत पर द्विपक्षीय बातचीत।	वार्ता विफल रही; जिन्ना दो-राष्ट्र सिद्धांत की पूर्ण स्वीकृति पर अड़े रहे।
5.	**1945-46 के चुनाव**	केंद्रीय विधानसभा में लीग ने 100% मुस्लिम सीटें	जिन्ना ने इन चुनावों को पाकिस्तान की मांग पर जनमत संग्रह (Referendum) के

		जीतीं।	रूप में प्रमाणित किया।
6.	**1946 - कैबिनेट मिशन**	तीन-स्तरीय संघ (Groups A, B, C) और कमजोर केंद्र का प्रस्ताव।	जिन्ना ने संघ के ढांचे को स्वीकार किया, लेकिन कांग्रेस के स्पष्टीकरण के बाद स्वीकृति वापस ले ली।
7.	**16 अगस्त 1946 - प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस**	लीग द्वारा पाकिस्तान की मांग के समर्थन में सड़कों पर उतरने का आह्वान।	कलकत्ता में भीषण दंगे (Great Calcutta Killings) हुए, जिसने देश में गृहयुद्ध जैसी स्थिति पैदा की और विभाजन को अपरिहार्य बना दिया।

सुझाव एवं नीतिगत निहितार्थ (Suggestions and Policy Implications)

- **संवैधानिक शक्ति-साझाकरण (Power-Sharing):** बहु-सांस्कृतिक और बहु-धार्मिक समाजों में केवल बहुमत का शासन (Simple Majority) पर्याप्त नहीं है। अल्पसंख्यकों की चिंताओं को दूर करने के लिए समावेशी संस्थागत ढाँचा आवश्यक है।
- **संस्थागत संवाद की निरंतरता:** राजनीतिक मतभेदों के काल में संवाद के रास्तों को बंद नहीं किया जाना चाहिए; संवादहीनता उग्रवाद और विभाजनकारी प्रवृत्तियों को जन्म देती है।
- **अल्पसंख्यक अधिकारों का संरक्षण:** लोकतन्त्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने अल्पसंख्यकों में सुरक्षा और स्वामित्व (Belongingness) का भाव कितना विकसित कर पाता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत शोध-पत्र मोहम्मद अली जिन्ना के राजनीतिक चिंतन के क्रमिक विकास, दो-राष्ट्र सिद्धांत (Two-Nation Theory) की अंतर्निहित वैचारिकी तथा 1937 से 1947 के मध्य घटे घटनाक्रमों का राजनीति विज्ञान के परिप्रेक्ष्य से एक आलोचनात्मक व विश्लेषणात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। शोध में निर्धारित उद्देश्यों एवं प्रश्नों के आलोक में मुख्य निष्कर्षों को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से रेखांकित किया गया है:

1. **राजनीतिक दर्शन का रूपांतरण (उदारवाद से पृथकतावाद):** शोध से यह सिद्ध होता है कि जिन्ना का राजनीतिक जीवन कोई एकरेखीय या प्रारंभ से ही विभाजनकारी मार्ग नहीं था। 1906 से 1930 के प्रथम चरण में वे दादाभाई नौरोजी और गोपाल कृष्ण गोखले के सिद्धांतों पर चलने वाले एक कट्टर उदारवादी व धर्मनिरपेक्ष नेता थे। 1916 के लखनऊ समझौते के मुख्य वास्तुकार के रूप में उन्हें न्यायसंगत रूप से 'हिंदू-मुस्लिम एकता का दूत' कहा गया। किंतु, 1928 की नेहरू रिपोर्ट द्वारा पृथक निर्वाचक मंडल को पूरी तरह समाप्त करने और जिन्ना के **'14 सूत्रों (1929)'** को कांग्रेस द्वारा खारिज कर दिए जाने के बाद, उनका संवैधानिक उदारवाद से मोहभंग हुआ। यह रूपांतरण किसी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से अधिक एकीकृत भारत के भीतर मुसलमानों के लिए संवैधानिक सुरक्षा उपायों की विफलता का परिणाम था।
2. **दो-राष्ट्र सिद्धांत की प्रकृति (धार्मिक आस्था बनाम संवैधानिक रणनीति):** शोध का एक अत्यंत महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि दो-राष्ट्र सिद्धांत (लाहौर प्रस्ताव, 1940) की नींव धार्मिक कट्टरता या धर्मशास्त्र (Theocracy) पर आधारित नहीं थी। जिन्ना स्वयं एक आधुनिक, पश्चिमी कानून के ज्ञाता और धर्मनिरपेक्ष जीवनशैली वाले व्यक्ति थे। उनके लिए 'मुस्लिम समुदाय' का अर्थ धार्मिक संप्रदाय से अधिक

एक राजनीतिक व सांस्कृतिक **'राष्ट्र' (Nation)** था। वेस्टमिंस्टर-शैली की लोकतांत्रिक व्यवस्था में 'बहुमत के शासन' (Majority Rule) से उत्पन्न होने वाली अल्पसंख्यकों की आशंकाओं को दूर करने हेतु दो-राष्ट्र सिद्धांत वास्तव में **संवैधानिक सौदेबाजी (Constitutional Bargaining)** का एक राजनीतिक उपकरण (Bargaining Chip) था। इसका मुख्य उद्देश्य एक संप्रभु क्षेत्र का निर्माण करने से अधिक केंद्र में मुस्लिम समुदाय के लिए बराबरी का राजनीतिक प्रतिनिधित्व और वीटो पावर प्राप्त करना था।

3. **1937-1947 के राजनीतिक गतिरोध एवं विभाजन की अपरिहार्यता:** शोध विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि विभाजन को अपरिहार्य बनाने में दो प्रमुख ऐतिहासिक मोड़ों की निर्णायक भूमिका रही:
    - **1937 के प्रांतीय चुनाव तथा सत्ता-साझाकरण की विफलता:** 1937 के चुनावों के बाद संयुक्त प्रांत (UP) में कांग्रेस द्वारा मुस्लिम लीग के साथ गठबंधन सरकार बनाने से इनकार करने के निर्णय ने लीग को यह अहसास कराया कि एक एकीकृत बहुसंख्यकवादी भारत में उनकी राजनीतिक प्रासंगिकता समाप्त हो जाएगी। इसके बाद ही जिन्ना ने लीग के जनाधार को बढ़ाने हेतु व्यापक जन-संपर्क अभियान चलाया।
    - **1946 की कैबिनेट मिशन योजना का पतन:** कैबिनेट मिशन द्वारा प्रस्तावित तीन-स्तरीय संघ (Groups A, B, C) का ढांचा एकीकृत भारत के भीतर प्रांतीय स्वायत्तता और अल्पसंख्यक सुरक्षा का अंतिम व्यावहारिक अवसर था। जिन्ना और मुस्लिम लीग ने इस योजना को स्वीकार कर लिया था, किंतु कांग्रेस द्वारा इसके संवैधानिक प्रावधानों पर दी गई आपत्तियों और तत्पश्चात उत्पन्न अविश्वास ने जिन्ना को 'प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस' (Direct Action Day) और पूर्ण विभाजन की राह पर धकेल दिया।
4. **परिकल्पनाओं का सत्यापन (Testing of Hypotheses):**
    - यह परिकल्पना पूर्णतः **सिद्ध होती है** कि जिन्ना का दो-राष्ट्र सिद्धांत किसी धार्मिक उग्रवाद का परिणाम न होकर एकीकृत भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यक वर्ग के राजनीतिक प्रतिनिधित्व, शक्ति-साझाकरण (Power-sharing) और अधिकार-सुरक्षा के संवैधानिक तंत्र की विफलता की प्रतिक्रिया था।
    - यह परिकल्पना भी पूर्णतः **सिद्ध होती है** कि 1937 में प्रांतीय स्तर पर कांग्रेस-लीग के बीच सत्ता-साझाकरण का अभाव तथा 1946 की कैबिनेट मिशन योजना के त्रि-स्तरीय संघ ढांचे का धराशायी होना ही वे मुख्य उत्प्रेरक (Catalyst) कारक बने जिन्होंने विभाजन को अनिवार्य परिणति में बदल दिया।

मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में निर्मित दो-राष्ट्र सिद्धांत एक पृथक राष्ट्र-राज्य (पाकिस्तान) के गठन में तो सफल रहा, परंतु इसने उपमहाद्वीप के इतिहास में कुछ मौलिक विरोधाभास भी छोड़े। 11 अगस्त 1947 को पाकिस्तान की संविधान सभा में जिन्ना द्वारा दिया गया भाषण–जिसमें उन्होंने राज्य को धर्मनिरपेक्ष घोषित करते हुए सभी नागरिकों को समान अधिकार देने की बात कही–यह प्रमाणित करता है कि उनका मूल दर्शन राजनीतिक-संवैधानिक सुरक्षा पर ही आधारित था। यद्यपि 1947 में भारत का विभाजन हो गया, किंतु विभाजित भारत में करोड़ों मुसलमानों की निरंतर उपस्थिति ने दो-राष्ट्र सिद्धांत की सार्वभौमिक भौगोलिक प्रासंगिकता पर प्रश्नचिह्न

लगा दिया। यह शोध दर्शाता है कि किसी भी बहु-जातीय एवं बहु-धार्मिक लोकतंत्र में केवल चुनावी बहुमत पर्याप्त नहीं होता; अल्पसंख्यकों के अधिकारों और वास्तविक शक्ति-साझाकरण की उपेक्षा राष्ट्रों के विघटन का कारण बन सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

- **अहमद, जे. डी.** (संपादक). (1960). *स्पीचेस एंड राइटिंग्स ऑफ मिस्टर जिन्ना* (खंड 1 एवं 2). शेख मोहम्मद अशरफ.
- **आजाद, ए. के.** (1959). *इंडिया विन्स फ्रीडम: एन ऑटोबायोग्राफिकल नैरेटिव*. ओरिएंट लॉन्गमैन.
- **जैक्सन, ए.** (2006). *इंपीरियल वॉर एंड द ब्रिटिश एम्पायर*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- **जलाल, ए.** (1985). *द सोल स्पोक्समैन: जिन्ना, द मुस्लिम लीग एंड द डिमांड फॉर पाकिस्तान*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- **नंदा, बी. आर.** (1989). *गांधी, पैन-इस्लामिज्म, इंपीरियलिज्म, एंड नेशनलिज्म*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- **ब्रेचर, एम.** (1959). *नेहरू: ए पॉलिटिकल बायोग्राफी*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- **मेनन, वी. पी.** (1957). *द ट्रांसफर ऑफ पावर इन इंडिया*. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस.
- **मून, पी.** (1961). *डिवाइड एंड क्विट*. चैटॉ एंड विंडस.
- **वोल्पर्ट, एस.** (1984). *जिन्ना ऑफ पाकिस्तान*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

ISARA INSTITUTE OF MANAGEMENT & PROFESSIONAL STUDIES

WWW.IIMPS.IN

EARN YOUR

MBA



Accreditation & Ranking

UGC / NCTE Approved.

INFO@IIMPS.IN

011-41005174

RESEARCH GATEWAY

STOP PLAGIARISM

1 Submit your content in Word File.

2 Get report in 48 hrs.

3 *Missing content or references will be fixed.

4 Citation for your work.

5 Get accurate user friendly report.

researchgateway.in | info@researchgateway.in

+91-9205579779

AROGYAM ONLINE

Arogyam Ayurveda

Holistic Healing through herbs

100% NATURAL

PARIVARTAN PSYCHOLOGY CENTER

COLOR PSYCHOLOGY : HOW COLOR AFFECT YOUR CHILD

BLUE — Calms your Child's Mind & Body

YELLOW — Promotes Concentration, Stimulates the Memory

PINK — Evokes Empathy, makes your Child Calm

RED — Excites and energizes your Child's body

GREEN — Improves Reading speed and Comprehension

www.parivartan4u.com

Confuse about your children's future?

भारतीय भाषा, शिक्षा, साहित्य एवं शोध

ISSN 2321 – 9726

WWW.BHARTIYASHODH.COM

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF MANAGEMENT SCIENCE & TECHNOLOGY

ISSN – 2250 – 1959 (0) 2348 – 9367 (P)

WWW.IRJMST.COM

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF COMMERCE, ARTS AND SCIENCE

ISSN 2319 – 9202

WWW.CASIRJ.COM

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF MANAGEMENT SOCIOLOGY & HUMANITIES

ISSN 2277 – 9809 (0) 2348 - 9359 (P)

WWW.IRJMSH.COM

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF SCIENCE ENGINEERING AND TECHNOLOGY

ISSN 2454-3195 (online)

WWW.RJSET.COM

INTEGRATED RESEARCH JOURNAL OF MANAGEMENT, SCIENCE AND INNOVATION

ISSN 2582-5445

WWW.IRJMSI.COM

JOURNAL OF LEGAL STUDIES,POLITICS AND ECONOMICS RESEARCH

WWW.JLPER.COM